ISSN: 2456–5474 RNI No.UPBIL/2016/68367 Vol-2* Issue-5* June-2017
Innovation The Research Concept

जैनेन्द्र के साहित्य में अकेली स्त्री की अवधारणा

सुनीत पासवान
शोध छात्र,
हिन्दी विभाग,
विश्व भारती, शान्ति निकेतन,
बीरभूम, पश्चिम बंगाल

सारांश

जैनेन्द्र के स्त्री–पात्र सदियों से चली आ रही नैतिक वर्जनाओं को प्रश्नांकित करती हैं । घर की सीमाओं में छटपटाती हुई अकेली स्त्री की ऊब का मनोविश्लेषणात्मक चित्रण तथा पारम्परिक नैतिक मर्यादाओं के बीच घुटती हुई अकेली स्त्रीओं के दर्द को उकेरने की कोशिश की है। विवाह–संस्था के अन्दर छटपटाती, विवाह संस्कृति के नैतिक दिवारों के बीच घुटती अकेली स्त्री का चित्रण जैनेन्द्र ने किया है। विवाह–संस्था के अन्दर छटपटाती अकेली स्त्री की अकेलेपन को स्त्री–पुरूष के हृदयगत दूरी के सन्दर्भ में जैनेन्द्र उठाते हैं एवं उनमें यह दृष्टिकोण परिवार–संस्था की गिरती हुई मर्यादा स्त्री–पुरूष मध्य सूखते हुए प्रगाढ़ संबन्धों को रेखांकित करने हेतु आया है ।

अकेली विधवा स्त्री सम्बन्धी समाज की अवधाराणात्मक कमजोरियों एवं हद दर्जे तक मानवीय दिवालियेपन को दरकिनार करते हुए जैनेन्द्र अपने प्रथम उपन्यास 'परख' में कट्टो का मानवीय, सरल, सहज जीवन का चित्रण किया है। 'सुनीता' के माध्यम से जैनेन्द्र ने पत्नी के बीच उत्पन्न एकरसता, जीवन के प्रति बढ़ती हुई अनास्था, ऊब और अकेलेपन की शिकार स्त्री का चित्र खींचा है । परिवार में सामंजस्यहीनता ही अकेलेपन का मूल श्रोत है। स्त्री के विए यह अकेलेपन की समस्या घर के भीतर और बाहर दोनों जगह समान रूप से बरकरार है। इसीलिए जैनेन्द्र का मानना है कि स्त्री को प्रकृति द्वारा प्रदत्त सृजनात्मक गुणों की अवहेलना नहीं करनी चाहिए।

मुख्य शब्द : परख, त्यागपत्र, सुनीता, कल्याणी, अनन्तर, दर्शाक आदि उपन्यास।

प्रस्तावना

स्त्रीत्व का सीधा अर्थ स्त्री के विशिष्ट गुणों अर्थात् उसके व्यक्तित्व से है। व्यक्तित्व में उसे विशिष्ट गुणों की अनुगूंज होती है, जो उसे विशिष्ट बनाती है। कोई भी व्यक्ति अपने इन्हीं विशिष्ट गुणों के कारण बंधी–बंधायी सफलता के पैमाने को तोड़ता है और नया मानक स्थापित करता है । विकासक्रम की यही प्रक्रिया अगर स्त्री के सन्दर्भ में लागू किया जाय तो यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि भारतीय समाज में व्यक्तित्व शब्द मुख्यतः पुरूष के लिये रूढ़ है। व्यक्तित्व कहने से स्त्री की छवि दूर–दूर तक भी दिमाग को झकझोरती नहीं है। यही कारण है कि भारतीय परम्परा में स्त्री के लिये व्यक्तित्व के समान अर्थ–संदर्भ की भूमिका निभाने वाला शब्द 'स्त्रीत्व' प्रचलित है।

स्त्री के प्रति पारम्परिक अवधारणा तथा विशेषण के पीछे पौरूषीय चेतना के अर्थ–सन्दर्भ को व्याख्यायित करते हुये अर्चना वर्मा लिखती हैं– ''स्त्रीत्व को अबतक जो हम समझते आये हैं–मातृत्व, कोमलता, स्नेह, समर्पण, वात्सल्य, श्रृंगार आदि, वे ऐसे कोई स्वाभाविक प्राकृतिक गुण नहीं हैं,जो स्त्री की देह के साथ जन्मजात हों । वे वस्तुतः स्त्री को लालसा की सामग्री बनाने वाले पुरूषप्रिय लक्षण हैं। स्त्री के ठोस हाड़–मांस के अस्तित्व का ये पुरूषकृत भावात्मक अमूर्तन है।''[1]

प्रश्न उठता है कि नारित्व की परिभाषा क्या हो? पत्नित्व, मातृत्व, समर्पिता, त्यागमयी और वात्सल्या आदि स्त्री व्यक्तित्व के सन्दर्भ में परम्परा द्वारा निर्धारित संकुचित एवं रूढ़ अवधारणा है तो व्यक्तित्ववादी दृष्टिकोण उसे ''स्त्रीत्व के प्रथम अर्थ यानी कोमलता, स्नेह, समर्पण, वात्सल्य, श्रृंगार जैसे गुणों के रूप में स्त्री के भावात्मक अमूर्तन को चुनौती देकर स्त्री स्वयं को एक दोयम दर्जे के पुरूष में बदल देती है।''[2] प्रश्न ज्यों का त्यों है कि स्त्रीत्व का पैमाना क्या हो? आशारानी ब्योरा के शब्दों में "नारीत्व, जिसका अपना एक पृथक अस्तित्व हो, अपनी एक छवि हो अपना एक अहम् हो, गौरव हो, अपना स्वाभिमान, अपनी उपयोगिता, अपनी सार्थकता हो। जो न पुरूष से हीन मानी जाए, न पुरूष की बराबरी में अपनी क्षमताओं का अपव्यय करे। जो पुरूष की पूरक हो, उसकी प्रेरणा हो। उसका मार्गदर्शन करने वाली हो। उसकी सहयोगी हो, घर–बाहर सभी जगह, सभी क्षेत्रों में ।"[3]

भारतीय समाज में स्त्रियों में एक कहावत प्रचलित है, एक स्त्री तीन बार जन्म लेती है – पहला जन्म माँ के गर्भ से , दूसरा विवाह के पश्चात् और तीसरा जन्म वह तब लेती है जब वह स्वयं माँ बनती है ।

जैनेन्द्र के स्त्री–पात्र सदियों से चली आ रही नैतिक वर्जनाओं को प्रश्नांकित करती हैं । घर की सीमाओं में छटपटाती हुई अकेली स्त्री की ऊब का मनोविश्लेषणात्मक चित्रण तथा पारम्परिक नैतिक मर्यादाओं के बीच घुटती हुई अकेली स्त्रीओं के दर्द को उकेरने की कोशिश की है । विवाह–संस्था के अन्दर छटपटाती, विवाह संस्कृति के नैतिक दिवारों के बीच घुटती अकेली स्त्री का चित्रण जैनेन्द्र ने किया है । विवाह–संस्था के अन्दर छटपटाती अकेली स्त्री की अकेलेपन को स्त्री–पुरूष के हृदयगत दूरी के सन्दर्भ में जैनेन्द्र उठाते हैं एवं उनमें यह दृष्टिकोण परिवार–संस्था की गिरती हुई मर्यादा स्त्री–पुरूष मध्य सूखते हुए प्रगाढ़ संबन्धों को रेखांकित करने हेतु आया है ।

अकेली विधवा स्त्री सम्बन्धी समाज की अवधाराणात्मक कमजोरियों एवं हद दर्जे तक मानवीय दिवालियेपन को दरकिनार करते हुए जैनेन्द्र अपने प्रथम उपन्यास 'परख' में कट्टो का मानवीय, सरल, सहज जीवन का चित्रण किया है । बचपन में ही विधवा हो जाने, अनजाने ही सामाजिक पाबंदियों में तड़पते हुए कट्टो का चरित्र बार–बार तथाकथित सभ्य समाज के पौरूषीय मिजाज को चुनौती देती है ।

'त्यागपत्र' की मृणाल भी ऐसी स्त्री–पात्र है, जो उपन्यास के आरंभ से अन्त तक एकाकी जीवन जीते को बाध्य होती है । भैया–भाभी के कठोर अनुशासन में पलने वाली मृणाल की खुशी में कोई साथ देता है और न ही दुःख में ।

'सुनीता' के माध्यम से जैनेन्द्र ने पत्नी के बीच उत्पन्न एकरसता,जीवन के प्रति बढ़ती हुई अनास्था, ऊब और अकेलेपन की शिकार स्त्री का चित्र खींचा है । अकेलेपन से उबरने के लिए सुनीता घर के काम धंधों में अपने को मिटा देना चाहती है, लेकिन फिर भी अकेलेपन से उबर नहीं पाती है । घर की चारदिवारी में बंद भारतीय स्त्रियों की त्रासद स्थितियों का बड़ा तार्किक चित्रण किया गया है ।

कल्याणी आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर होने के बावजूद अकेलेपन की शिकार होती है, क्योंकि जीवन पैसे से नहीं प्रेम से चलता है। प्रेम के बिना व्यक्ति मशीन हो जाता है। मशीन संवेदना–शून्य होता है । पैसा मनुष्य को भी संवेदना शून्य बना देता है। इसकी मार्मिक अभिव्यक्ति 'कल्याणी' उपन्यास में होता है। डा0 असरानी का सिर्फ कल्याणी के पैसे से प्यार होने के कारण, कल्याणी मानसिक रोग का शिकार होती है। पति द्वारा सहयोग तो दूर सहानुभूति तक कल्याणी को नहीं मिलती है । वस्तुतः कल्याणी ऐसी अकेली स्त्री है, जिसका अपना परिवार है अर्थात् पति है, बच्चे हैं, परन्तु उसके सुख–दुख में कोई उसके साथ नहीं है। कथा वक्ता की सुखद गृहस्थी को देख वे उसे स्वर्ग कहती हैं, क्योंकि वहाँ आपसी प्रेम सदभाव है "स्वर्ग में क्या सभी रह सकते हैं ।"[4] कल्याणी का प्रेमी प्रीमियर भी अपनी असमर्थता व्यक्त कर देता है । अंततः कल्याणी अकेलेपन के कारण मानसिक विक्षिप्ता की शिकार हो , मर जाती है । उसकी घुटन इन शब्दों में प्रकट होती है "वह पति है, पिता है, सब है, लकिन उन मेरे गाँधी के भक्त की मर्जी यही है न कि मैं अपनी राह पर अकेली रह जाऊँ ? अकेली ! अकेली !! अकेली !!!"[5]

'अनन्तर' की अपरा ऐसी अकेली स्त्री का प्रतिनिधित्व करती है, जिसके लिये अकेलापन शक्ति के अक्षय श्रोत के रूप में है । किसी भी काम को न तो वह छोटा समझती है और न ही बड़ा । निर्द्वन्द्व तरीके से जीती हुई, वह समकालीन स्वतंत्र स्त्री की छवि के रूप में पेश आती है । उसका परिचय भी जैनेन्द्र कुछ इसी अंदाज में देते हैं "अपरा को देखा । निश्चय ही अपराजिता होने योग्य है । चेहरे पर अनिश्चय नहीं है । ———यह अपरा है । विलायत में शादी के आठ वर्ष निभाकर और अभी तलाक जीत कर आयी है ।"[6] शादी और फिर तलाक जीतने का हौसला अपरा के चरित्र को बंधन मुक्त और निर्द्वन्द्व बनाती है । सम्पूर्ण उपन्यास में वह स्नेहिल समरस और सौहार्दशील स्त्री के रूप में दिखती है । वह अकेलेपन के बोझ से दबती नहीं है, बल्कि अकेलेपन को ढाल के रूप में प्रयोग करते हुए जीवन को सफलता पूर्वक जीती है । इसके विपरीत 'चारू' एक ऐसी स्त्री है, जिसका परिवार है, बच्चे हैं, फिर भी वह द्वन्द्वग्रस्त रहती है, और पूरे परिवार में भी वह स्वयं को अकेला महसूस करती है ।

निष्कर्ष

वस्तुतः परिवार में सामंजस्यहीनता ही अकेलेपन का मूल श्रोत है। स्त्री के विए यह अकेलेपन की समस्या घर के भीतर और बाहर दोनों जगह समान रूप से बरकरार है। इसीलिए जैनेन्द्र का मानना है कि स्त्री को प्रकृति द्वारा प्रदत्त सर्जनात्मक गुणों की अवहेलना नहीं करनी चाहिए। 'दशार्क' की रंजना परिवार में सामंजस्यहीनता की ही द्वन्द्वग्रस्त परिणति है। परिवार में तालमेल के अभाव के कारण ही रंजना गृहिणी सरस्वती से वेश्या रंजना बनने पर मजबूर होती है। वेश्या बनकर रंजना के रूप में वह अपनी तर्क से पितृसत्ता की संकीर्णताओं पर चोट करती है। वास्तव में वह एक मनोचिकित्सक के अभियान से स्वयं को जोड़ती है और मानव–मानव के बीच दूरियों के आंतरिक कारणों की पड़ताल करने की कोशिश करती हैं। पति से अलग होकर भी वह खुद को असहाय महसूस नहीं करती है, बल्कि अकेलेपन के सकारात्मक पक्ष को जीती हुई स्वतंत्रता के मर्म को निश्चित आयाम देती है । घर की बंधी–बंधायी चौहद्दी में वह अन्य पुरूषों के मन को समझ नहीं सकती थी । इसलिए वह घर के बाहर कदम रखती है। अपने उद्देश्य की पूर्ति के बाद वह घर वापस लौटती है।

जैनेन्द्र स्त्री के अकेलेपन के पक्ष में नहीं थे। यही कारण है कि लगभग सभी उपन्यासों के स्त्री–पात्र घर की सीमाओं को अतिक्रमित करने, स्वतंत्रता के अर्थ को समझने के बाद वापस घर लौटती है क्योंकि जैनेन्द्र ने स्त्री –पुरूष को 'भिन्न–भिन्न' से अधिक एक दूसरे के लिए 'अभिन्न' माना है। यही कारण है कि अकेलेपन की

सार्थकता को जी लेने के बाद जैनेन्द्र के स्त्री–पात्र नयी ऊर्जा के साथ परिवार के साथ जुड़ती है। प्राकृतिक दृष्टिकोण से भी जैनेन्द्रीय दर्शन सार्थक जान पड़ता है, क्योंकि जवानी तक स्त्री आकर्षण का केन्द्र बनी रहती है, शरीर के कारण उसे सभी लोग सम्मान दे सकते हैं । लेकिन समय बीतने अर्थातन उम्र ढलने के पश्चात् स्त्री अकेली हो जायेगी । इसलिए जैनेन्द्र स्त्री–पुरूष की सार्थकता एक दूसरे से जुड़ने में ही मानते हैं ।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *अस्मिता विमर्श का स्त्री स्वर, अर्चना वर्मा, मेधा बुक्स, दिल्ली ,2008,पृष्ठ – 55 ।*
2. *अस्मिता विमर्श का स्त्री स्वर, अर्चना वर्मा, मेधा बुक्स, दिल्ली ,2008,पृष्ठ – 56 ।*
3. *औरत कल,आज और कल, आशारानी व्होरा, कल्याणी शिक्षा परिषद, दिल्ली, 2006, पृष्ठ – 189 ।*
4. *कल्याणी, जैनेन्द्र कुमार , पूर्वोदय प्रकाशन, नई दिल्ली , पृष्ठ – 60 ।*
5. *कल्याणी ,जैनेन्द्र कुमार , पूर्वोदय प्रकाशन, नई दिल्ली पृष्ठ – 142 ।*
6. *अनन्तर, जैनेन्द्र कुमार, पूर्वोदय प्रकाशन, नई दिल्ली , पृष्ठ – 08*